भारतीय ज्ञान धरोहर

विमर्श और परंपरा

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान धरोहर

विमर्श और परम्परा

सम्पादक

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

मो. **9660111549**

संस्करण :

प्रथम 2023

***ISBN :* 978 - 81 - 89435 - 69 - 1**

मूल्य - **400/-**

रचना - भारतीय ज्ञान धरोहर : विमर्श और परम्परा

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

17

बूंदी चित्रकला में नारी-चित्रण के सामाजिक रूपों का अंकन एवं विवेचन

राकेश कुमार माली
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

बूंदी चित्रकला राजस्थानी लघुचित्र परंपरा का वह प्रमुख स्वरूप है जिसमें नारी-चित्रण अत्यंत सौम्यता, कोमलता और भावनात्मक गरिमा के साथ उभरता है। इस कला में नारी को केवल सौंदर्य की वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और भावनाओं की प्रतिनिधि के रूप में देखा गया। उस समय का समाज, उसका सौंदर्य-बोध, राजदरबारी संस्कृति, धार्मिक वातावरण और प्रकृति-प्रेम कलाकारों की दृष्टि को प्रभावित करते थे, इसलिए नारी का चित्रण समाज के वास्तविक जीवन और आदर्शों, दोनों को एक साथ प्रतिबिंबित करता है।

बूंदी चित्रों में नारी का सौंदर्य अत्यंत नाजुक और कलात्मक रूप में व्यक्त हुआ है। बड़ी आँखें, मनोहर मुखाकृति, सुघड़ शरीर और आकर्षक वस्त्र उस समय के सामाजिक सौंदर्य-मापदंडों को दर्शाते हैं। कलाकारों ने नारी को प्रकृति के साथ सामंजस्य में प्रस्तुत किया—कभी वह बगीचों में टहलती है, कभी सरोवर के तट पर खड़ी है, तो कभी वर्षा या वसंत के दृश्यों में तन्मय प्रतीत होती है। इससे स्पष्ट होता है कि समाज में नारी को प्रकृति के सौंदर्य का सहचर माना जाता था।

नारी के दैनिक सामाजिक जीवन का भी सहज चित्रण मिलता है। दर्पण देखती नायिका, श्रृंगार करती युवती, दीपक लिए स्त्री या सखियों संग हँसती-खेलती आकृतियाँ उस युग की स्त्री-जीवन की वास्तविक छवियाँ हैं। कलाकार ने नारी की भावनाओं, उसकी मन:स्थिति और उसकी अंत:चेष्टाओं को भी सूक्ष्मता से उकेरा, जिससे चित्र केवल बाहरी सौंदर्य नहीं बल्कि भावनात्मक गहराई भी प्रकट करते हैं।

श्रृंगार और प्रेम, बूंदी चित्रकला का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। विरहिणी नायिका, मिलन की प्रतीक्षा करती स्त्री, प्रेम में डूबी आकृति ये सब उस समय की काव्य-परंपरा से प्रभावित हैं, जिसमें नारी को प्रेम-भावना की सर्वाधिक संवेदनशील वाहक

माना गया। कलाकारों ने नारी के चेहरे के भावों, उसकी दृष्टि और उसकी मुद्राओं के माध्यम से प्रेम और मनोभावों के सूक्ष्म तरलपन को चित्रित किया।

धार्मिक और आध्यात्मिक रूप में भी नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। देवी–स्वरूप, पूजा में लीन स्त्री, राधा के भावों में रंगी नायिका ये रूप समाज की धार्मिक आस्थाओं और स्त्री के आध्यात्मिक योगदान को दर्शाते हैं। राजदरबार में रानियों और राजकन्याओं के चित्रों से उस समय के सामाजिक वर्ग–भेद, भव्यता और परंपराओं की भी झलक मिलती है।

मनुष्य मूलतः सामाजिक प्राणी है। वह समाज की समस्याओं, विचारों और भावनाओं का सृष्टिकर्ता भी है और उन्हीं से प्रभावित भी होता है। मानव स्वभाव की यह सामाजिकता उसके व्यक्तित्व, उसकी अनुभूतियों, कल्पनाओं और कलात्मक उपकरणों को आकार देती है। जब सामाजिक संरचना में अंतर्विरोध उत्पन्न होते हैं, तब वे मनुष्य के भीतर मानसिक असंतुलन और अस्वास्थ्य की स्थिति पैदा करते हैं; इसलिए व्यक्ति के अहं का विकास भी समाज से पृथक संभव नहीं है। मानव की भावाभिव्यक्ति समाज में ही परिष्कृत होती है और वही भाव बाद में कलाकृति के रूप में मूर्त होकर सामने आते हैं। समाज से अलग मनुष्य की प्रतिक्रिया और पशु की प्रतिक्रिया में कोई स्पष्ट अंतर स्थापित नहीं किया जा सकता, इसलिए भावों का परिष्कार सामाजिक वातावरण में ही विकसित होता है।

कला का समाज से अत्यंत गहरा और अविभाज्य संबंध है। कलाकार किसी समाज में जन्म लेता है, उसी के अनुभवों से प्रभावित होता है और अन्ततः अपनी कला के माध्यम से उसी समाज को प्रभावित भी करता है। सामाजिक परिस्थितियाँ ही कलाकार को उसकी कला की शैली, उसकी भावनाएँ, उसकी विषयवस्तु, उसके विचार तथा कला–सृजन में आवश्यक साधन उपलब्ध कराती हैं। जैसे–जैसे समाज का विकास होता है, उसी अनुपात में कला का भी विस्तार होता है। मानव इतिहास की दृष्टि से कला केवल व्यक्ति और समाज के भावनात्मक संबंधों को व्यक्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि वह ऐसे प्रतीकों का निर्माण भी करती है जिनसे समाज में पारस्परिक बंधन और गहरे संबंध विकसित होते हैं। कार्य, मनोरंजन, धर्म, राज्य, उत्सव, गाथाएँ और वीरतापूर्ण प्रयत्न ये सब कलात्मक क्रियाएँ हैं जो मनुष्य को समाज से जोड़ती हैं और सामूहिक चेतना को जागृत करती हैं।

कला मनुष्य और समाज के बीच संतुलन बनाए रखती है। वह मानव के मनोविकारों, उसके आचरण और अनुभवों को दिशा देती है और उन्हें संवेदनशील बनाती है। इस प्रकार कला न केवल मनुष्य के आंतरिक भावों को व्यवस्थित करती

है, बल्कि समाज की संरचना में सामंजस्य स्थापित कर उसे सांस्कृतिक रूप से दृढ़ भी बनाती है।

कला वह माध्यम है जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व शाश्वत रूप से अभिव्यक्त होता है। कला मनुष्य के जीवन को न केवल समृद्ध और अर्थपूर्ण बनाती है, बल्कि उसे मुक्त, श्रमशील और सामाजिक भी करती है। मानव जीवन की पीड़ाएँ, उसके स्वप्न, आकांक्षाएँ और उसकी सृजनशील कुशलता ये सभी कला के माध्यम से ही साकार रूप पाती हैं। मनुष्य को जिस आत्मविश्राम और मानसिक शांति की आवश्यकता होती है, उसका वास्तविक आधार भी कला ही है। कला मनुष्य की पूर्णता को अभिव्यक्त करती है, परंतु इसके साथ ही वह वह तत्व भी उजागर करती है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच के भेद को मिटाकर उन्हें एक सूत्र में जोड़ देता है। इसी कारण कला को सत्य, शिव और सुंदर की समन्वित अभिव्यक्ति माना जाता है।

कला एक उच्च आदर्श भूमि पर व्यवस्था, संतुलन और सामंजस्य उत्पन्न करती है। वह मानव सभ्यता को विघटन से बचाकर उसे एक दिशा प्रदान करती है। धर्म, दर्शन, नीति, आचार और नैतिकता जैसे समस्त तत्त्व-चिंतन क्षेत्रों का समन्वय भी कला ही करती है, क्योंकि उसमें उन सभी को समेटने की क्षमता निहित होती है। इस प्रकार कला न केवल मनुष्य की संवेदनाओं को व्यक्त करती है, बल्कि समाज और सभ्यता के विकास में भी एक एकीकृत और प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है।

कला के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि वही कृतियाँ श्रेष्ठता की ऊँचाई तक पहुँचती हैं जो परंपरा, सामाजिकता, राष्ट्रीय चेतना और अनेक कलाकारों के सामूहिक परिश्रम का परिणाम होती हैं। कठोर यथार्थ के बीच मनुष्य के भीतर एक आदर्श लोक की कल्पना जन्म लेती है, और विभिन्न व्यक्तियों के ये आदर्श मिलकर एक सामाजिक आदर्श का रूप धारण करते हैं। यहाँ व्यक्ति और समाज का अंतर मिट जाता है और कला उसी आदर्श जगत को मूर्त रूप में प्रस्तुत करती है। इसी कारण कला व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य स्थापित करने की शक्ति रखती है।

जब कलाकार अपनी व्यक्तिगत विचित्रताओं को अत्यधिक महत्व देता है तो उसकी कला समाज से कटकर दुर्बोध और संकुचित हो जाती है। इसके विपरीत जो कलाकार अपनी कृति को सामूहिक प्रयासों और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है, उसकी कला अधिक व्यापक और सार्थक बनती है, चाहे उसमें उसके व्यक्तिगत नाम की गहरी छाप हो या न हो। आधुनिक समय में भित्ति-चित्रों जैसे माध्यम इस सामाजिकता को अधिक प्रभावी ढंग से वहन कर सकते हैं, इसलिए कहा जा सकता है कि कला समाज का दर्पण है और कलाकार समाज की गतिविधियों को अनदेखा

करके नहीं रह सकता। कला प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के साथ चलती है और कलाकार के आदर्श, यथार्थ, श्रेय और प्रेम—सब मिलकर उसकी अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाते हैं। इससे कला का स्वरूप और विस्तार दोनों बढ़ जाते हैं।

क्रोचे ने कला को मानसिक अभिव्यक्ति का रूप कहा है और उसी अभिव्यक्ति को सौंदर्य की वास्तविक अनुभूति माना है। अरस्तु ने भी प्रकृति की अपूर्णता को स्वीकार करते हुए कहा कि कला उसी कमी की पूर्ति करती है। मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ इसे और स्पष्ट करती हैं कि जो कुछ अपूर्ण है, कला उसी की पूर्ति का माध्यम बनती है, और जो होने की आकांक्षा मनुष्य के भीतर है, कला उसे व्यक्त कर देती है। प्राकृतिक सौंदर्य ईश्वरीय सुषमा का संकेत है और कला इस संकेत की पुनरावृत्ति है।

कला की प्रकृति उसके रूपों के अनुसार भिन्न-भिन्न दिखाई देती है, हालांकि क्रोचे जैसे विचारक कला के वर्गीकरण को अनावश्यक मानते हैं। उनके अनुसार कला कलाकार की आत्मा से जन्म लेती है, और आत्मा अविभाज्य है; अत: कला भी विभाजित नहीं की जा सकती। इस प्रकार विभिन्न मतों के बावजूद कला का मूल स्वरूप मानव मन की गहन संवेदनाओं और आदर्शों को व्यक्त करने की शक्ति में निहित है, जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास को निरंतर प्रभावित करती रहती है।

कला को लेकर 'कला के लिए कला' और 'कला जीवन के लिए' — ये दो विचारधाराएँ लंबे समय से चर्चा में रही हैं। पहली विचारधारा का मत है कि कला अपने आप में पूर्ण है, उसका उद्देश्य केवल सौन्दर्य की अनुभूति है। इस मत के अनुसार कला न तो नैतिकता से बँधी है, न उपयोगिता से; जैसे विज्ञान सत्य की खोज में किसी भी वीभत्सता से नहीं रुकता, और धर्म अपने तप-संयम को सौन्दर्य के आधार पर नहीं बदलता, वैसे ही कला को भी अपने स्वतंत्र क्षेत्र में स्वतंत्र रहना चाहिए। कला का मूल्य उसके रूप, लय और सौन्दर्यात्मक प्रभाव में निहित है, न कि उसके सामाजिक प्रयोजन में।

इसके विपरीत, 'कला जीवन के लिए' मानने वाले कलाकार कला को समाज से अभिन्न मानते हैं। उनके अनुसार कलाकार एक सामाजिक चेतन प्राणी है, इसलिए उसकी सृष्टि भी समाज के लिए होती है। कला में जीवन की वेदना, आशा, संघर्ष, करुणा और सामूहिक अनुभूति अभिव्यक्त होती है; इसलिए कला को समाज से अलग कर देखना उसके वास्तविक उद्देश्य का हनन है। गुप्त जी ने भी कहा है कि कला

और मनुष्य के बीच पारस्परिकता अनिवार्य है कलाकार समाज के लिए रचता है और समाज कला में अपना प्रतिबिम्ब देखता है। इस प्रकार कला न केवल सौन्दर्य का सृजन करती है, बल्कि जीवन को भी स्पर्श कर उसे समृद्ध बनाती है।

कला चाहे सौन्दर्य की मानसिक अभिव्यक्ति हो या जीवन की यथार्थ छवि, वह समाज से कभी अलग नहीं रह सकती। कलाकार स्वयं समाज का अंग होता है और उसकी अनुभूतियाँ, कल्पनाएँ तथा सृजनात्मकता भी सामाजिक परिवेश से ही आकार ग्रहण करती हैं। इसलिए कला समाज के सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन और मानवीय संवेदनाओं का सजीव दर्पण बन जाती है। कलाकार जो कुछ रचता है—चित्र, साहित्य, संगीत या अन्य विधाएँ—उनमें अनिवार्य रूप से सामाजिक जीवन की छाप अंकित रहती है।

मनुष्य का आरम्भ से अंत तक का अस्तित्व समाज में ही निहित होता है, इसीलिए कलाकार की दृष्टि बार-बार अपने परिवेश पर लौटती है। जीवन की प्रक्रियाएँ, लोक व्यवहार, मानव संबंध और परिवेश की स्थितियाँ—सब कला के माध्यम से व्यक्त होती हैं। चित्रकला में भी यह सत्य स्पष्ट दिखाई देता है।

बून्दी-कोटा क्षेत्र के नारी-अंकनों में यह सामाजिकता अत्यंत प्रभावपूर्ण रूप में उभरकर आती है। इन भित्ति-चित्रों में नारी-जीवन की सरलता, सौन्दर्य, गतिविधियाँ, दैनिक शैली और भावनात्मक संसार अत्यंत स्वाभाविक ढंग से व्यक्त हुआ है। यहाँ केवल देवी या राजपरिवार की स्त्रियाँ ही नहीं बल्कि सामान्य स्त्रियों का जीवन भी समान संवेदनशीलता से चित्रित किया गया है। इस प्रकार इन चित्रों में उस समय की सामाजिक परिस्थिति, सांस्कृतिक परिवेश और नारी-जीवन की पूर्ण छवि मिलती है, जो इन्हें सामाजिक दर्पण के रूप में स्थापित करती है।

कला के विषय में यह प्रश्न बहुत समय से विचारयोग्य रहा है कि कला केवल कला के लिए है या फिर जीवन के लिए। कला को केवल सौन्दर्य के लिए स्वतंत्र मानने वाले कहते हैं कि जैसे विज्ञान, धर्म और नीति अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र हैं, वैसे ही कला को भी सत्य और नीति के बंधन में नहीं बाँधा जाना चाहिए। दूसरी ओर कला को जीवन की अभिव्यक्ति मानने वाले कलाकार कहते हैं कि कलाकार सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसकी कला भी समाज से ही अपना अर्थ पाती है। गुप्त जी ने भी स्पष्ट कहा है कि कला और कलाकार में पारस्परिकता आवश्यक है, क्योंकि कला उसी समाज के लिए होती है जिसमें कलाकार जीता और अनुभव प्राप्त करता है।

वास्तविकता यह है कि कला चाहे सौन्दर्य का विशुद्ध प्रतिपादन हो या जीवन

की अनुभूतियों का वर्णन—वह समाज से कभी अलग नहीं हो सकती। कला समाज के सुख-दुख, आशा-निराशा, उत्थान-पतन, और जीवन संघर्षों का प्रतिबिंब होती है। इसलिए कला को समाज का दर्पण कहा गया है। कलाकार समाज में जीकर उसी समाज को अपनी विषयवस्तु बनाता है, और यही कारण है कि कला के माध्यम से हमें किसी भी युग की सामाजिक परिस्थितियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

बूँदी और कोटा शैली के नारी-अंकनों में भी यही सामाजिकता पूरी सहजता से प्रकट होती है। यहाँ के चित्रों में देवी-देवियों और राजपरिवार की स्त्रियों के साथ-साथ सामान्य नारी के जीवन को भी उसी सरलता और मनोयोग से चित्रित किया गया है। दैनिक जीवन, पारिवारिक संबंध और घरेलू गतिविधियों को बड़े स्वाभाविक ढंग से कलात्मक रूप दिया गया है। कोटा के शीष महल में लक्ष्मी का विष्णु के चरणों की सेवा करते दृश्य हों या बूँदी की हवेलियों में पार्वती का शिव को भांग छानने में सहयोग—ये सभी चित्र परिवार और दांपत्य-संबंधों की सांस्कृतिक व्याख्या करते हैं।

बूँदी-कोटा के महलों और हवेलियों की छतों पर सूर्य को केंद्र में चित्रित कर उड़ती परियों द्वारा पुष्प वर्षा दिखाना भी इसी परम्परा का भाग है, जिसमें दैवीयता और सौन्दर्य का अद्भुत संगम मिलता है। पौराणिक प्रसंग जैसे कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी तथा दशरथ के साथ बाल राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के दृश्य—या यशोदा-कृष्ण की लीलाएँ—इन चित्रों में अत्यंत मनोमुग्धकारी रूप से दिखाई देते हैं। विशेषत: कृष्ण की बाल लीलाएँ और माखन चोरी के दृश्य बहुत लोकप्रिय रहे हैं।

राम-सीता-लक्ष्मण का वनगमन, भरत-मिलाप, कैकयी-मंथरा के संवाद, दशरथ का शोक—ये सभी प्रसंग सामाजिक और पारिवारिक भावनाओं को विस्तार से व्यक्त करते हैं। सीता को सर्वत्र अपने पति की अनुगामिनी, धैर्यशील और आदर्श रूप में दर्शाया गया है। माताओं के हृदय की पीड़ा और परिवार के भीतर उत्पन्न संघर्षों को भी कलाकारों ने अत्यंत मार्मिकता से उकेरा है।

बून्दी-कोटा क्षेत्र की राजकीय चित्रकला उस समय के सामाजिक जीवन को अत्यंत स्पष्टता से प्रस्तुत करती है। इन चित्रों में रानियों का जीवन, उनके विविध क्रियाकलाप, उनके महलों का वातावरण और उनकी दिनचर्या को अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से अंकित किया गया है। राजमहलों की पृष्ठभूमि में रानियों को सम्पूर्ण भव्यता के साथ दर्शाया गया है—कहीं वे मसनद पर आलंकारिक आसनों में बैठी हुई दिखाई देती हैं, तो कहीं किसी सहचरी रानी के साथ वार्तालाप में तन्मय हैं। चित्रकार ने संयोजन की दृष्टि से रानी के आकार को उभारकर उन्हें उनके राजसी पद का प्रतीक

बनाया है। उनके वस्त्राभूषण, केन्द्रीय व्यक्तित्व और मुद्राएँ सब कुछ उनकी रानी-सत्ता का परिचय देते हैं।

इन चित्रों में महल का मनोरंजन-परक वातावरण अत्यंत सुरुचिपूर्ण दिखाई देता है। रानियाँ नृत्यकांगनाओं के नृत्य का रसास्वादन करती हुई, वाद्य यन्त्र बजाती स्त्रियों को सुनती हुई या सुंदर अलंकरणों से सजे कालीनों पर विराजमान दिखती हैं। वातावरण में शालीनता, वैभव और कलात्मकता का अद्भुत सामंजस्य है। रानियों के आसपास दासियाँ विभिन्न कार्यों में संलग्न दिखाई जाती हैं—कोई चँवर डुला रही है, कोई पंखा झल रही है, कुछ पेय पदार्थ प्रस्तुत कर रही हैं। इस प्रकार के जीवन-दृश्य बून्दी और विशेषत: कोटा के शीष महल में अधिक संख्या में मिलते हैं। कहीं-कहीं रानियों को चौपड़ जैसे मनोरंजन के खेलों में भी तल्लीन दिखाया गया है।

रानियों के श्रृंगार सम्बन्धी दृश्य भी विशेष रूप से उकेरे गये हैं। कहीं दासियाँ उन्हें सजाती-सँवारती दिखाई देती हैं, कहीं रानी स्वयं दर्पण में अपना सौन्दर्य निहारती हुई दिखाई देती है। दर्पणों के भीतर उनके प्रतिबिम्ब तक बड़े कौशल से अंकित किए गए हैं। अनेक चित्रों में रानियों के स्नान दृश्य भी मिलते हैं, जहाँ दासियाँ उनकी सहायता करती हुई दिखाई देती हैं या रानी एकांत में स्नान उपरान्त अपने भीगे बालों और सरल आकृति में दर्शाई गई है। कुछ चित्रों में कृष्ण के रूप में राजा को रानी को एकांत में निहारते हुए भी दिखाया गया है, जिससे चित्र में कथा-रस और अंतरंगता दोनों बनते हैं।

बून्दी व कोटा के भित्ति-चित्रों में राजसी जीवन की यह सम्पूर्ण श्रृंखला न केवल सौन्दर्य और कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि उस समय के समाज, रीति-रिवाजों, महिलाओं के जीवन, उनकी दिनचर्या और महल संस्कृति का जीवंत दर्पण भी प्रस्तुत करती है। इस प्रकार ये चित्र केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास का मूल्यवान दस्तावेज भी बन जाते हैं।

बून्दी-कोटा क्षेत्र के भित्ति-चित्र रानियों के दैनिक तथा राजसी जीवन की अत्यन्त जीवंत झांकियाँ प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों में रानियों को कबूतर उड़ाते, दाना चुगाते, पक्षियों से स्नेहपूर्वक बतियाते तथा मोर या अन्य पक्षियों को गोद में उठाए हुए दिखाया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि वे प्राकृतिक सौन्दर्य से गहरे जुड़ी थीं। कई स्थानों पर रानियाँ स्वयं भी वीणा, सारंगी या अन्य वाद्य बजाती दिखाई देती हैं, जो इस क्षेत्र की रानियों में संगीत विद्या की दक्षता का द्योतक है।

उनके राजसी वैभव और सभ्यता का परिचय उन चित्रों से मिलता है जिनमें उन्हें मदिरापान करते हुए दर्शाया गया है। मदिरा पात्रों—सुराही और गिलास—पर

मुगल शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। कहीं-कहीं उन्हें धीमे घूँट लेते हुए मदिरा के प्रभाव में डूबती हुई मुद्रा में चित्रित किया गया है।

इसके अतिरिक्त रानियों की घुड़सवारी भी इन चित्रों का महत्त्वपूर्ण विषय है। उन्हें घोड़े पर सवार, अग्र-पृष्ठ में और पीछे दासियों के साथ जुलूस के रूप में दिखाया गया है। जिस प्रकार राजाओं के सवारी-दृश्य शाही वैभव के साथ अंकित होते थे, उसी प्रकार रानियों की सवारी को भी समान ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा और मर्यादा के साथ चित्रित किया गया है। इस प्रकार बून्दी-कोटा के ये भित्ति-चित्र रानियों के सौन्दर्य-बोध, विलास, दिनचर्या, संस्कार तथा सामाजिक जीवन का समग्र एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं।

कोटा शैली के शिकार दृश्य अपनी विशिष्टता के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध हैं। शेर, सूअर और भैंसे जैसे जंगली पशुओं के साथ ही बून्दी में हिरण तथा कोटा के अर्जुन महल में पक्षियों के शिकार के दृश्य भी विशेष रूप से उकेरे गए हैं। इन चित्रों में महारानियों को घोड़ों पर सवार होकर तीर-कमान, भाले, तलवार और कभी-कभी बन्दूक का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है, जिससे उस समय की स्त्रियों की साहसिक भूमिका का ज्ञान होता है। कई दृश्यों में राजकुमारियाँ भी रानियों के साथ शिकार का हिस्सा बनी दिखाई गई हैं।

रानियों के एकांकी चित्र भी मिलते हैं, जिनमें वे गद्दी पर बैठी या हाथ पर पक्षी लिए दिखाई देती हैं। उनके सौन्दर्य, भाव और मनोवैज्ञानिक स्थितियों को सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। मुगल शैली का प्रभाव कई स्थानों पर, जैसे फूल सूंघती आकृतियों या सुरुचिपूर्ण मुद्राओं में, सहजता से दिखाई देता है। कुछ स्थानों पर समलैंगिकता अथवा हास्यजनक मुद्राओं में हिजड़ों के चित्रण भी मिलते हैं, जो उस समय के सामाजिक दृष्टिकोण और मनोरंजन कथाओं को प्रकट करते हैं।

आम नागरिकों का जीवन भी चित्रकारों से छूटा नहीं है। कुओं पर पानी भरती स्त्रियाँ, साधारण वेशभूषा में दिखाई देती ग्रामीण नारियाँ, और चम्बल नदी के घाटों पर स्नान करती स्त्रियाँ उस समय के सामाजिक परिवेश का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। इन स्नान दृश्यों में जल की पारदर्शिता, स्त्रियों की गतिशील मुद्राएँ और उनके शरीर की लयात्मकता अत्यंत कलात्मक सौंदर्य के साथ उभरी है। स्नान के बाद वस्त्र धारण करती, श्रृंगार करती या आपस में वार्तालाप करती स्त्रियाँ भी कोमलता से चित्रित हुई हैं। कहीं-कहीं जनाने घाटों पर स्त्रियों को चुपके से निहारते मनचले पुरुष भी सामाजिक वास्तविकताओं को प्रकट करते हैं।

पारिवारिक जीवन से जुड़े दृश्य—जिनमें स्त्रियाँ अपने पति और बच्चों के

साथ दिखती हैं—भी इस क्षेत्र की चित्रकला का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। कई चित्रों में किशोरियों का समूह नृत्य या खेल में मग्न दिखाई देता है, जो जीवन की सहजता और उल्लास का प्रतीक है।

समग्र रूप से देखा जाए तो बून्दी-कोटा क्षेत्र की चित्रकला में नारी जीवन के विविध पक्ष—सामाजिक, भावात्मक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक—उत्कृष्ट कलात्मकता के साथ उभरते हैं। समूह चित्रों में भी प्रत्येक नारी की पोशाक, श्रृंगार और व्यक्तित्व पर अलग-अलग ध्यान दिया गया है, जो इस शैली की विशिष्टता और श्रेष्ठता को प्रमाणित करता है।

❖❖❖